थिमैया और अन्य

बनाम

निंगम्मा और अन्य

25 अगस्त, 2000

[एपी. मिश्रा और रूमा पाल, जे.जे]

हिंदू कानून-उत्तराधिकार-सहदायिक संपत्ति का हस्तांतरण-पुत्र ने मृतक पिता (कर्ता) की संपत्ति के विभाजन के लिए मुकदमा दायर किया, जिसमें पैतृक स्वामित्व वाली संपत्ति शामिल थी--कर्ता की पत्नी और अविवाहित बेटी ने विरोध किया, कर्ता ने पत्नी को पैतृक संपत्ति की मद दान में दी थीं और अलग-अलग दान विलेखो द्वारा अविवाहित बेटी को स्व-अर्जित संपत्तियां, बाद में बेटे की सहमति से विचारण न्यायालय और अपीलीय अदालत ने सहमति का अभाव पाया और इसके अलावा उच्च न्यायालय ने पत्नी के दावे को नकारते हुए दिया दान के रूप में सहदायिक संपत्तियां बेटी को नहीं दी जा सकती थीं। लेकिन अविवाहित बेटी को दिया गया दान वैध रूप से बेटे की सहमति से दिया गया था-उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा कि अविवाहित बेटी को दिया गया दान या तो उचित सीमा के भीतर था या किसी मान्यता प्राप्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए था-तथ्यों के

आधार पर, सहदायिकी का दान माना गया। अविवाहित बेटी को दी गई संपत्ति कानूनी रूप से असंबद्ध थी।

मृतक कर्ता की अविवाहित बेटी, सहदायिक पुत्र की सहमति से उसे सहदायिक संपत्तियों के दान का दावा कर रही है - अन्य सहदायिक दान के लिए सहमति नहीं दे रहे हैं - इन परिस्थितियों में, बेटी को दिया गया दान अमान्य था- हिंदू उत्तराधिकार विधि।

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956, धारा 6 परन्तुक, स्पष्टीकरण 1- मैसूर हिंदू विधि महिला अधिकार अधिनियम, 1933, धारा 8(1)(ए), (डी) और 8(2)(सी) (मैसूर अधिनियम) - उच्च अदालत ने अविवाहित बेटी को मिताक्षरा सहदायिकी संपत्ति में 1/9 वें हिस्से का हकदार माना - क्या मैसूर अधिनियम लागू होता है - नहीं, क्योंकि मृत सहदायिक का हित उत्तरजीविता से पारित नहीं हो सकता था और मैसूर अधिनियम को 1956 एसीएफ की धारा 6 अधिरोपित होती है। हालाँकि, अविवाहित बेटी को मैसूर अधिनियम की धारा 8(2)(सी) के तहत अपने भाई का 1/4 हिस्सा मिलेगा जो कि धारा 6 अधिनियम 1956 के तहत निर्वसीयती पुरुष के उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हिस्से के अतिरिक्त होगा।

सिविल प्रक्रिया संहिता 1908, धारा 100- तथ्यों के प्रश्न पर दूसरी अपील में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप का दायरा निर्णित उच्च न्यायालय

साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने और एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने का पात्र नहीं है - अभ्यास और प्रक्रिया।

एच की मृत्यु के तुरंत बाद उसके बेटे टी ने मिट्स एंड बाउंडस द्वारा विभाजन के लिए वादपत्र की अनुसूची में वर्णित 12 संपत्तियों की सीमा और ऐसी संपत्तियों में 7/12 वें हिस्से के अलग कब्जे के लिए एक मुकदमा दायर किया। वाद में मामला यह था कि अनुसूची संपत्तियों की मद 1 और 2 पैतृक थीं और शेष सभी संपत्तियां सहदायिक से संबंधित थीं। अगले वाद में कहा गया था कि एच ने अवैध रूप से अपनी जीवित दूसरी पत्नी एन को 1 और 2 दिनांकित 17.11.1967 विलेख और मद 3 से 6 दिनांकित 9.6.1971 के विलेख द्वारा अपनी अविवाहित बेटी डी को एन के माध्यम से दान में देने की मांग की थी। टी ने दावा किया कि दान शून्य थे।

टी के भाई-बहन जिन्हें मुकदमे में प्रत्यर्थी 3, 4 और 5 के रूप में नामित किया गया था, ने टी का समर्थन करते हुए सभी 12 संपत्तियों में से 1/4 हिस्से का दावा किया। एन और डी ने स्वीकार किया कि मद सं० 1 और 2 पैतृक संपत्ति थे परन्तु मद संख्या 3 से 6 एच की स्व-अर्जित संपत्तियां थीं। उन्होंने दावा किया कि दोनों विलेख निपटान विलेख थे। पहले ने मद 1 और 2 में से एन के रखरखाव के लिए प्रावधान किया और उनकी मृत्यु के बाद, संपत्तियों पुनः एच के पास वापस आने का दूसरे विलेख

द्वारा, मद 3 से 6 को टी की सहमति से डी पर तय किया गया था, जो बाएं अंगूठे का निशान लगाने के अलावा दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर भी किए थे।

निचली अदालत ने दानों को न केवल सहमति की कमी के कारण शून्य पाया, लेकिन यह भी पाया कि एच, डी को 3 से 6 मदो को दान देने में अक्षम था। सहदायिक संपत्ति का दान डी को किसी भी पवित्र उद्देश्य के लिए नहीं दिया गया था। प्रथम अपीलीय अदालत ने निचली अदालत के निष्कर्ष और निष्कर्ष से सहमती व्यक्त की।

एन और डी द्वारा की गई दूसरी अपील में, उच्च न्यायालय ने निर्णित किया कि डी धारा 8 मैसूर हिंदू विधि 1933 (मैसूर अधिनियम) के तहत सहदायिक संपत्ति में 9 वें हिस्से का हकदार है। लेकिन एन का दावा न केवल मैसूर अधिनियम के तहत बल्कि दिनांक 17.11.1967 के विलेख के तहत भी नकारा गया। इसके अलावा उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मद 3 से 6 तक टी की सहमति से डी को दान में दिया जाना वैध था और इसलिए विभाजन के लिए उपलब्ध नहीं था। टी ने इस न्यायालय में अपील की।

न्यायालय ने अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया

1.1. एच सहदायिक संपत्ति की वस्तुओं को डी को दान नहीं कर सकता था और दिनांक 9.6.1971 का दान विलेख हिंदू विधि के तहत मान्य नहीं था। उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा था कि क्या एच से डी द्वारा सहदायिकी वस्तुओं का दान था या डी की शादी के समय विवाह के पूर्व किये गये वादे को निपटाने की पूर्ति में था।[661-ई; डी]

अम्माथायी उर्फ, पेरुमलक्कल बनाम कुमारेसन उर्फ बालाकृष्णन, एआईआर (1967) एससी 569, संदर्भित।

1.2. केवल टी की सहमति लेने से काम नहीं चलेगा. उन सभी व्यक्तियों से सहमति प्राप्त की जानी थी जो मृतक सहदायिकों के हित में हिस्सेदारी का दावा कर सकते थे। अपीलकर्ता 2, 3 और 4 एच के प्रथम श्रेणी के उत्तराधिकारी थे और उन्होंने दान के लिए सहमति नहीं दी थी। दान विलेख दिनांक 9.6.71 की वैधता पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष पोषणीय नहीं था। [662-एफ]

गुरम्मा बनाम मल्लप्पा, एआईआर (1964) एससी 510, संदर्भित।

2.1. मैसूर अधिनियम की धारा 8(1)(डी) को 1956 अधिनियम की धारा 6 के परंतुक द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था। दोनों प्रावधानों को एक साथ पढ़ने पर, जहां महिला सदस्य मैसूर अधिनियम की धारा 8 के तहत सुरक्षा की मांग कर रही हैं, वे वास्तव में एक मृत सहदायिक के

वर्ग । के उत्तराधिकारी हैं, संयुक्त परिवार की संपत्ति में उनका हित उत्तरजीविता से बिल्कुल भी पारित नहीं हो सकता था। मैसूर अधिनियम की धारा 8(1)(डी) के तहत इसे किसी भी वर्ग की महिलाओं के अधिकारों के अधीन पारित करने का सवाल ही नहीं उठता। [665-एफ-जी]

गुरुपाद खंडप्पा मगदुम बनाम हीराबाई खंडप्पा मगदुम, [1978] 3 एससीआर 671, अलग किया।

महाराष्ट्र राज्य बनाम नारायण रुओ, [1985] 3 एससीआर 358, संदर्भित।

2.2. यदि मैसूर अधिनियम की धारा 8(1)(ए) के तहत एच और टी के बीच सहदायिकी संपत्तियों का वास्तविक विभाजन होता, तो मुझे 1/2 हिस्सा मिलता। एन और अपीलकर्ताओं 2, 3 और 4 को सहदायिकी संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलेगा। लेकिन अविवाहित बेटी के रूप में डी को मैसूर अधिनियम की धारा 8(2)(सी) के अनुसार गणना की गई हिस्सेदारी मिलेगी, अर्थात्, एच के उत्तराधिकारी के रूप में उसके हिस्से के अलावा उसके भाई टी के हिस्से का ¼ भाग मिलेगा। सभी अपीलार्थी और साथ ही दोनों प्रत्यर्थी निर्वसीयता के उत्तराधिकारी के रूप में एच के हित में समान हिस्सा प्राप्त करने के अधिकारी थे। [667-ए-बी]

3. उच्च न्यायालय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन और अलग निष्कर्ष पर पहुंचने का पात्र नहीं था। इसके अलावा प्रत्यर्थी पर दायित्व था कि वो टी की सहमति को साबित करे। जब 3 से 6 तक की मदों को प्रत्यर्थी द्वारा एच को स्व-अर्जित संपत्ति होने का दावा किया जा रहा था, तो उस स्तर पर तर्क दिया जा सकता था कि टी ने 3 से 6 तक की वस्तुआेंं के दान के लिये सहमति इस आधार पर दी थी कि यह सहदायिक संपतियों टी एकमात्र अन्य सहदायिक था। [660-ई]

लाडली पार्षद जसवाल बनाम करनाल डिस्टिलरी कंपनी लिमिटेड कुर्नाल, एआईआर (1963), संदर्भित।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार सिविल अपील संख्या 1062/1992।

कर्नाटक उच्च न्यायालय के आर.एस.ए. संख्या 116/1981 में के निर्णय और आदेश दिनांक 01.08.91 से

अपीलकर्ताओं के लिए सुश्री ललिता कौशिक

प्रतिवादियों की ओर से राजेश महाले और केसी सुदर्शन

न्यायालय का निर्णय डी रूमा पाल, जे. द्वारा सुनाया गया।

इस अपील में तय किया जाने वाला मुद्दा सहदायिक संपत्तियों में प्रत्येक पक्ष की हिस्सेदारी है। हिरी थिमैया (संक्षेप में हिरी के रूप में संदर्भित) सहदायिक का कर्ता था। उनकी दो पत्नियां थी सिदम्मा और निंगम्मा। अपीलकर्ता हिरी की पहली पत्नी सिदम्मा की संतान है। प्रत्यर्थी संख्या 1 दूसरी पत्नी है और प्रत्यर्थी संख्या-2 उसकी बेटी है।

हिरी की 1971 में मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद, 1972 में, अपीलकर्ता नम्बर 1 ने वादपत्र की अनुसूचित में वर्णित 12 सम्पत्तियों के मिटस और बाउंडस द्वारा विभाजन के लिए ओर ऐसी सम्पत्तियों में 7/12 वें हिस्से के अलग कब्जे के लिये मुकदमा दायर किया। वाद में मामला यह था कि अनुसूची सम्पत्तियों की मद 1 और 2 पैतृक थी और शेष सभी सम्पत्तियां सहदायिक की थीं। वाद में आगे का मामला यह था कि हिरी ने मद नम्बर 1 और 2 को विलेख दिनांक 17.11.1967 द्वारा प्रत्यर्थी नम्बर 1 को और मद 3 से 6 को विलेख दिनांक 09.06.1971 द्वारा प्रत्यर्थी नम्बर 2 को दान में देने की मांग की थी। अपीलकर्ता नम्बर 1 ने एक घोषणा का दावा किया कि दान शून्य थे।

मुकदमें में अपीलकर्ताओं 2, 3 और 4 को प्रत्यर्थी 3, 4 और 5 के रूप में नामित किया गया था उन्होंने अपीलकर्ता नम्बर 1 के मामले का

पर्याप्त समर्थन करते हुए और सभी 12 सम्पत्तियों में 1/4 हिस्सेदारी का दावा करते हुए एक जवाब दावा दायर किया।

अपने जवाब दावा में, प्रत्यर्थियों (जो मुकदमें में प्रत्यर्थी 1 और 2 थे) ने स्वीकार किया कि मद 1 और 2 पैतृक सम्पत्ति थे, लेकिन दावा किया कि मद 3 से 6 हिरी की स्व-अर्जित सम्पत्ति थे। उन्होंने दावा कि दोनों विलेख सेटलमेंट विलेख थे। 17.11.1967 के पहले निपटान विलेख में मद 1 और 2 में से प्रत्यर्थी नम्बर 1 के भरण-पोषण का प्रावधान किया गया था और उसकी मृत्यु के बाद, सम्पत्तियां हिरी को वापस कर दी गई थी। दूसरे विलेख दिनांक 09.06.1971 द्वारा, मद 3 से 6 को अपीलकर्ता नम्बर 1 की सहमति से दूसरे प्रत्यर्थी पर तय किया गया था, जिसने न केवल विलेख पर अपने बाएं अंगूठे का निशान लगाया गया था, बल्कि एक सहमत पक्षकार के रूप में दस्तावेज पर हस्ताक्षर भी किए थे।

अभिवचनों के आधार पर तनकी तय किए गए। चुनाव लड़ने वाले दलों के समर्थन में गवाहों से पूछताछ की गई। विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत इस दावा को खारिज कर दिया कि दोनों कार्य निपटान के कार्य थे। यह माना गया कि मद 3 से 6 हिरी की स्व-अर्जित सम्पत्तियां नहीं थी, बल्कि सहदायिकी की थी और दोनों कार्य दान के कार्य थे और शून्य थे। इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर, विचारण न्यायालय

अपीलकर्ता नम्बर 1 के तर्क पर ध्यान दिया कि उसके साथ धोखाधड़ी की गई थी और उसने दस्तावेज दिनांक 09.06.1971 पर अपनी सहमति के माध्यम से अपने बाएं अंगूठे का निशान नहीं लगाया था और कहा

> "यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि वादी के चाचा डी.डब्ल्यू-2 के साक्ष्य में यह बताने के लिए तथ्य है कि प्रश्नगत दस्तावेज के निष्पादन के उसी दिन, वादी के पिता ने उसके पक्ष में एक और दस्तावेज निष्पादित किया था। प्रदर्श पी 24 के अनुसार उसके भाई डी डब्लू - 2 के और उस दस्तावेज के लिये वादी की सहमति प्राप्त करने के क्रम में, वादी के हस्ताक्षर धोखे से प्रदर्श डी 2 पर प्राप्त कर लिये गये है।"

हालांकि, विचारण न्यायालय ने यह नहीं माना कि विलेख केवल अपीलकर्ता नम्बर 1 की सहमति के अभाव के कारण शून्य थे। अम्माथायी उर्फ पेरूमलक्कल और अन्य में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए वी. कुमारेसन उर्फ बालाकृष्णन और अन्य ए.आई.आर. 1967 एससी 569 में विचारण जज ने माना कि हिरी अपीलकर्ता नम्बर 1 की सहमति के बावजूद प्रत्यर्थी नम्बर 2 को मद 3 से 6 दान में देने में अक्षम था। विचारण जज के अनुसार अचल पैतृक सम्पत्तियां इसे केवल अविवाहित बेटी

की शादी जैसे पवित्र उद्देश्यों के लिए उचित सीमा के भीतर ही दान में दिया जा सकता है। विचारण न्यायालय ने पाया कि सहदायिक सम्पत्तियों का एक बड़ा हिस्सा हिरी द्वारा प्रत्यर्थी नम्बर 2 को दान में दिया गया था और यह नहीं कहा जा सकता है कि दान किसी पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए दूसरे प्रत्यर्थी के पक्ष में दिया गया था। जब दान दिया गया तो उसकी उम्र विवाह योग्य उम्र से काफी कम थी।

अपीलकर्ता नम्बर 1 के मुकदमें का तदनुसार 8 अगस्त, 1977 को फैसला सुनाया गया जैसा कि प्रत्यर्थी नम्बर 1 ने प्रार्थना की थी और विभाजन के लिए एक प्रारम्भिक डिक्री पारित की गई थी।

प्रत्यर्थियों ने जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील दायर की। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय के निष्कर्षो का बरकरार रखा कि सम्पत्तियां सहदायिकी थी और प्रत्यर्थियों के पक्ष में हिरी द्वारा निष्पादित दो विवादित कार्यो से प्रभावित नहीं हो सकती थी। सहमति के सवाल पर, जिला न्यायाधीश ने कहा:

> "वादी ने यह रूख अपनाया है कि जब वह उप-रजिस्ट्रारों के पास गया था तो उसके साथ धोखाधड़ी करके उसका एलटीएम प्रदर्श डी. 1 (ई) में प्रदर्श डी. 1 पर ले जाया गया था। किसी साइट की बिक्री के संबंध में उनके

पिता द्वारा किसी अन्य दस्तावेज के निष्पादन के समय कार्यालय, भले ही इसे डी.डब्ल्यू के साक्ष्यों के आधार पर माना जा सकता हो। 1 और 2 में कहा गया है कि वादी ने अपनी एलटीएम को प्रदर्श डी-1 (ई) पर डालकर प्रदर्श डी-1 को प्रमाणित किया है, मुझे प्रदर्श डी-1 की वैधता को बरकरार रखना मुश्किल लगता है, क्योंकि इसके मुख्य भाग में कोई पाठ नहीं है। प्रदर्श डी-1 की सम्पत्तियां वादी की विशिष्ट सहमति से एच. थिमैया द्वारा दूसरे प्रत्यर्थी के पक्ष में दान में दी गई थी। इसलिए, वादी द्वारा अपना एलटीएम डालकर प्रदर्श डी-1 का केवल सत्यापन, प्रदर्श डी-1 के तहत पारिवारिक सम्पत्तियों के काफी हिस्से के दान को मान्य नहीं करेगा।''

प्रत्यर्थियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दूसरी अपील दायर की गई थी। वहां प्रत्यर्थियों द्वारा पहली बार यह आग्रह किया गया कि मैसूर हिंदू विधि अधिकार अधिनियम, 1993 (इसके बाद मैसूर अधिनियम के रूप में निर्दिष्ठ) के आधार पर, प्रत्यर्थी नम्बर 1 विधवाओं के हिस्से का हकदार था और प्रत्यर्थी नम्बर 1, 2 अविवाहित बेटियों को हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के साथ-साथ दिनांक 17.11.1967 और 09.06.1971 के दो विलेखों के तहत हिरी के उत्तराधिकारी के रूप में निर्वसीयता पर उनके

अधिकारों के अलावा हिस्सा मिलता है। उच्च न्यायालय ने माना कि प्रत्यर्थी नम्बर 2 मैसूर अधिनियम की धारा 8 के तहत सहदायिक सम्पत्ति में 1/9 वें हिस्से का हकदार था, लेकिन न केवल मैसूर अधिनियम के तहत, बल्कि विलेख दिनांक के तहत भी प्रत्यर्थी नम्बर 1 के दावे को खारिज कर दिया। 17.11.1967 जहां तक दिनांक 09.06.1971 के विलेख का संबंध है, उच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि मद 3 से 6 अपीलकर्ता नम्बर 1 की सहमति से प्रत्यर्थी नम्बर 2 को दान में दिये गये थे और इसलिए, वैध थे। उच्च न्यायालय ने माना कि विचारण न्यायालय ओर प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि अपीलकर्ता नम्बर 1 ने दान के लिए सहमति नहीं दी थी, यह किसी भी स्वीकृत साक्ष्य पर आधारित नहीं था। उच्च न्यायालय के अनुसार, इसलिये मद 3 से 6, विभाजन के लिए उपलबध नहीं थे और शेष सम्पत्तियों के लिये पक्षकारों के अधिकार निम्न थेः

अपीलकर्ता संख्या 1 4/9 + 4/54 = 28/54

(पुत्र)

अपीलकर्ता संख्या 2 = 4/54

(विवाहित पुत्री)

अपीलकर्ता संख्या 3		=	4/54
(विवाहित पुत्री)			
अपीलकर्ता संख्या 4		=	4/54
((विवाहित पुत्री)			
प्रत्यर्थी संख्या 1		=	4/54
(विधवा)			
प्रत्यर्थी संख्या 2	1/9 + 4/54	=	10/54
(अविवाहित पुत्री)			

1 अगस्त, 1991 को उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय को इस न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी गई है कि दूसरी अपील पर उच्च न्यायालय को तथ्य के समवर्ती निष्कर्षो में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था अपीलकर्ताओं पर सहमति का अभाव थी और उन्हें मैसूर अधिनियम के प्रावधानों को लागू नहीं करना चाहिए था, जो अपीलकर्ताओं के अनुसार, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 4 के प्रावधानों द्वारा बाहर रखा गया था।

प्रत्यर्थियों ने इस निर्णय पर भरोसा किया है कि लाडली पार्षद जयसवाल बनाम द करनाल डिस्टिलरी कंपनी लिमिटेड़ करनाल और अन्य ए.आई.आर. 1963 एससी 1279 मामले में न्यायालय ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष को उलटने में सक्षम था कि अपीलकर्ता नम्बर 1 की कोई सहमति नहीं थी। क्योंकि यह निष्कर्ष बिना किसी सबूत पर आधारित था। यह भी तर्क दिया गया है कि मैसूर अधिनियम के प्रावधान हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 और विशेष रूप से धारा 6 और 8 के प्रावधानों के सहायक हैं।

उस अधिनियम का जयसवाल मामले (सुपरा) में, निर्मित कियाः

> "इस न्यायालय ने, इसमें कोई संदेह नहीं, यह माना है किः प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय गलत तरीके से या बिना किसी सबूत के आधार पर जिम्मेदारी डालने के बाद आया, या जहां प्रक्रिया में पर्याप्त त्रुटि या दोष हुआ हो, उत्पादन करना गुण-दोष के आधार पर मामले के निर्णय में त्रुटि या दोष निर्णायक नहीं है और उस निर्णय के विरूद्ध दूसरी अपील उच्च न्यायालय में की जा सकती है।"

लेकिन साथ ही, इस न्यायालय ने नोट किया है कि उच्च न्यायालय के पास तथ्य की गलत खोज के आधार पर दूसरी अपील पर विचार करने

का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, भले ही त्रुटि कितनी भी गम्भीर या अक्षम्य क्यों न हो। दूसरे शब्दों में, यदि कुछ सबूत है और सबूत की विवेचन गलत है, तो दूसरी अपील नहीं की जाएगी।

इसके अलावा, जयसवाल मामले में निर्णय धारा 100 के संशोधन से पहले दिया गया था, जिसके द्वारा दूसरी अपील के प्रावधान अधिक कठोर हैं और सख्ती से उन मामलों तक ही सीमित हैं जहां विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है और किसी अन्य में नहीं।

हम सहमति के प्रश्न पर विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षो को पहले ही नोट कर चुके हैं। इन टिप्पणियों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि विचारण न्यायालयों के निष्कर्ष के समर्थन में कुछ सबूत थे। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय सबूतों का पुनर्मूल्यांकन करने और एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने का हकदार नहीं था। इसके अलावा अपीलकर्ता नम्बर 1 की सहमति के तथ्य को साबित करने का दायित्व प्रत्यर्थियों पर था जब प्रत्यर्थियों द्वारा मद 3 से 6 तक हिरी की स्व-अर्जित सम्पत्ति होने का दावा किया जा रहा था, तो उसी क्रम में शायद ही तर्क दिया जा सकता था कि अपीलकर्ता नम्बर 1 ने इस आधार पर मद 3 से 6 के दान के लिए सहमति दी थी। यह

सहदायिक सम्पत्ति थी और अपीलकर्ता नम्बर 1 एकमात्र अन्य सहदायिक था।

उच्च न्यायालय ने दान पर सहमति के प्रभाव पर भी अपने निष्कर्ष में गलती की, जो अन्यथा अमान्य हो सकता है। यह न्यायालय अम्माथायी उर्फ पेरूमलक्कल और एक अन्य वी. कुमारेसन उर्फ बालाकृष्णन और अन्य ए.आई.आर. 1967 एससी 569 ने पैतृक सम्पत्तियों के दान के सवाल पर हिंदू विधि का सारांश निम्नलिखित शब्दों में दिया हैः

> "पैतृक सम्पत्ति के दान के सवाल पर हिंदू विधि अच्छी तरह से सिद्ध है। जहां तक चल पैतृक सम्पत्ति का सवाल है, स्नेहवश पत्नी, बेटी और यहां तक कि बेटे को भी दान दिया जा सकता है, बशर्ते दान उचित सीमा के भीतर हो। उदाहरण के लिए संपूर्ण या लगभग संपूर्ण पैतृक चल सम्पत्ति के दान को स्नेह के माध्यम से दिए गए दान के रूप में बरकरार नहीं रखा जा सकता है। (मुल्लास हिंदू विधि, 13 वां संस्करण, पृष्ठ 252, पैरा 225 देखें)। लेकिन जहां तक अचल पैतृक सम्पत्ति का सवाल है, चल पैतृक सम्पत्ति की तुलना में दान की शक्ति कहीं अधिक सीमित है। एक हिंदू पिता या किसी अन्य प्रबंध सदस्य को पवित्र

उद्देश्यों के लिए उचित सीमा के भीतर पैतृक अचल सम्पत्ति का दान देने की शक्ति है; (देखें मुल्लास हिंदू विधि, 13 वां संस्करण, पैरा 226, पृष्ठ 252)। अब आमतौर पर पवित्र उद्देश्यों से जो समझा जाता है वह धर्मार्थ और/या धार्मिक उद्देश्यों के लिए दान है। लेकिन इस न्यायालय ने पवित्र उद्देश्यों के अर्थ को उन मामलों तक बढा दिया है जहां एक हिंदू पिता अपनी बेटी को उसकी शादी की शर्तो के निपटारे के अवसर पर किए गए विवाह पूर्व वादे को पूरा करने के लिए अचल पैतृक सम्पत्ति की उचित सीमा के भीतर दान देता है, और पिता की मृत्यु होने पर मां भी ऐसा कर सकती है। (देखें कमला देवी बनाम बच्चू लाल गुप्ता, 1957 एससीआर (एआईआर 1957 एससी) 434)''

कर्ता तभी सक्षम है या उसके पास सहदायिक सम्पत्ति का निपटान करने की शक्ति है यदि (ए) निपटान सहदायिक सम्पत्ति का उचित हिस्सा है और (बी) निपटान एक मान्यता प्राप्त पवित्र उद्देश्य के लिए है। उच्च न्यायालय इस बारे में किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा है कि क्या हिरी द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 को मद 3 से 6 का दान उचित सीमा के भीतर था या शर्तो के निपटान के अवसर पर किए गए एक विवाह पूर्व वादे की पूर्ति में था। प्रत्यर्थी नम्बर 2 की शादी। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि

दोनों मामलों में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष स्वीकार किए गए थे। ऐसा होने पर, हिरी प्रत्यर्थी संख्या 2 को मद 3 से 6 दान नहीं कर सकता था और दिनांक 09.06.1971 का दान विलेख हिंदू विधि के तहत अस्वीकार्य था। सवाल यह है कि क्या अपीलकर्ता नम्बर 1 की सहमति से ऐसा हस्तान्तरण किया जा सकता है?

यह तर्कपूर्ण है कि शून्य निपटान और शून्यकरणीय निपटान के बीच अन्तर है, और प्रत्यर्थी नम्बर 2 के पक्ष में दान शून्य होने के कारण अपीलकर्ता नम्बर 1 की सहमति से भी नहीं दिया जा सकता है। हालांकि, इस मुद्दे को उस दृष्टिकोण से तय करना आवश्यक नहीं है जो हमने इस मामले में लिया है।

गुरम्मा वी. मल्लप्पा एआईआर 1964 एससी 510 में इस न्यायालय ने शून्यकरणीय लेनदेन की तीन स्थितियों की परिकल्पना की है। यह माना गया कि एक प्रबंध सदस्य संयुक्त परिवार की सम्पत्ति को तीन स्थितियों में अलग कर सकता हैः (i) विधिक आवश्यकता, या (ii) सम्पत्ति का लाभ, या (iii) परिवार के सभी सहदायिकों की सहमति से। जहां अंतरण सभी सहदायिकों की सहमति से नहीं होता है, वहां उस सहदायिक के कहने पर, जिसकी सहमति प्राप्त नहीं की गई है, शून्यकरणीय है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जहां केवल एक मात्र जीवित सहदायिक

है और परिवार का कोई अन्य सदस्य नहीं है जिसका सम्पत्ति में संयुक्त हित है, वहां सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कोई बंधन नहीं है। यह मानते हुए कि गुरम्मा वी. मल्लप्पा (सुपरा) में प्रतिपादित सिद्धांत संयुक्त परिवार की सम्पत्ति के शून्य हस्तांतरण पर लागू होगा, सभी इच्छुक पक्षकारों की सहमति का प्रश्न अभी भी बना रहेगा।

सहदायिक सम्पत्तियों के कुछ निपटान की अनुमेयता के पीछे तर्क अन्य सहदायिकों के हितों की सुरक्षा है। जहां अन्य व्यक्तियों को सहदायिक सम्पत्ति में रूचि है, चाहे वह अपर्याप्त हो या अन्यथा, और स्वेच्छा से किसी भी उद्देश्य के लिए इस तरह के ब्याज की कमी को स्वीकार करते हैं, ऐसे स्वभाव की अनुमति होगी। इस मामले में, अपीलकर्ता नम्बर 1 के अलावा, यदि हिरी के अन्य उत्तराधिकारियों की ऐसी रूचि थी, तो केवल अपीलकर्ता नम्बर 1 की सहमति प्राप्त करने से काम नहीं चलेगा।

विवादित विलेख 1971 में उसी वर्ष हिरी की मृत्यु से पहलेनिष्पादित किया गया था, । इस समय तक, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 लागू हो चुका था। धारा 6 का प्रावधान 1956 अधिनियम (बाद में फैसले में अधिक विस्तार से विचार किया गया) में अब यह प्रावधान है कि मिताक्षरा सहदायिक सम्पत्ति में मृतक का हित उत्तरजीविता द्वारा हस्तांतरित नहीं होता है यदि मृतक अनुसूची के वर्ग 1 में निर्दिष्ट जीवित महिला रिश्तेदारों

को छोड़ देता है। नतीजतन, ऐसे मामले में, मृतक के सहदायिक हिस्से में जीवित सहदायिक का हित अब जीवित नहीं रहता है और संयुक्त परिवार की सम्पत्ति व उसके हित को कम करने के लिए उसकी सहमति सहदायिक सम्पत्ति का दान अन्यथा अमान्य, वैध नहीं होगी। ऐसे मामले में उन सभी व्यक्तियों से सहमति प्राप्त करनी होगी जो मृतक सहदायिक के हित में हिस्सेदारी का दावा कर सकते हैं। अपीलकर्ता 2, 3 और 4 के साथ-साथ दोनों प्रत्यर्थी हिरी के प्रथम श्रेणी में उत्तराधिकारी हैं। यह प्रत्यर्थियों का मामला नहीं है कि अपीलकर्ता 2, 3 और 4 ने दान के लिए सहमति दी थी। इसलिए, हमारी राय है कि दिनांक 09.06.1971 के दान विलेख की वैधता पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष पोषणीय नहीं है और तदनुसार इसे रद्द किया जाता है।

अगला प्रश्न मैसूर अधिनियम की धारा 8 (1) (डी) का लागू होना है। शुरूआत में यह कहा जा सकता है कि हालांकि हम पक्षकारों के हिस्सों के बारे में निकले निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं, लेकिन हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने धारा 8 (1) (डी) के प्रावधानों को गलत समझा है। धारा 8 में लिखा है:

> ”8. कुछ महिलाएं बंटवारे के समय हिस्से की हकदार है।
>
> (1) (ए) किसी व्यक्ति और उसके बेटे या बेटों के बीच संयुक्त

परिवार की सम्पत्ति के बंटवारे पर, उसकी माँ, उसकी अविवाहित बेटियां और उसके पूर्व-मृत अविभाजित बेटों और भाईयों की विधवाएं और अविवाहित बेटियां, जिन्होंने कोई पुरूष संतान नहीं छोड़ी है, उसके साथ साझा करने के लिए हकदार होंगी।

(बी) भाईयों के बीच संयुक्त परिवार की सम्पत्ति के बंटवारे पर, उनकी मां, उनकी अविवाहित बहनें और उनके पूर्व-मृत अविभाजित भाईयों की विधवाएं और अविवाहित बेटियां, जिनके पास कोई पुरूष संतान नहीं है, उनके साथ साझा करने की हकदार होंगी।

(सी) उप-धारा (ए) और (बी) संयुक्त परिवार में अन्य सहदायिकों के बीच विभाजन पर यथोचित परिवर्तनों के साथ भी लागू होंगे।

(डी) जहां संयुक्त परिवार की सम्पत्ति जीवित रहने के कारण एकल सहदायिक के पास चली जाती है, यह उपरोक्त उप-अनुभागों में सूचीबद्ध महिलाओं के वर्गो के शेयरों के अधिकार के अधीन होगी।

(2) ऐसा शेयर निम्नानुसार तय किया जाएगा:-

(ए) विधवा के मामले में, यदि उसका पति जीवित होता, तो उसे अपने हिस्से के रूप में आधा हिस्सा मिलता;

(बी) मां के मामले में, यदि उसका बेटा जीवित है तो बेटे के हिस्से का आधा हिस्सा और किसी अन्य मामले में, यदि उसका पति जीवित होता तो उसका आधा हिस्सा अपने हिस्से के रूप में प्राप्त करेगा;

(सी) प्रत्येक अविवाहित बेटी या बहन के मामले में, यदि उसका एक भाई जीवित है, तो उसके भाई का एक-चौथाई हिस्सा और किसी अन्य मामले में, यदि उसके पिता जीवित हैं, तो उसका एक-चौथाई हिस्सा होगा। अपने हिस्से के रूप में प्राप्त करेः बशर्ते कि इस धारा के तहत एक बेटी या बहन जिस हिस्से की हकदार है, उसमें उचित दहेज या शादी का हिस्सा सहित उसकी शादी के वैध खर्च शामिल होंगे, न कि इसके अतिरिक्त।

(3) इस खण्ड़ में, विधवा शब्द में वह शामिल है, जहां एक ही व्यक्ति से अधिक विधवाएं हैं और वे सभी संयुक्त रूप से हैं, और मां शब्द में सौतेली मां शामिल है और जहां मां और सौतेली मां दोनों हैं, ये सभी संयुक्त रूप से पुत्र शब्द में

एक सौतेला बेटा, एक पोता और एक परपोता भी शामिल है; और मां से संबंधित इस धारा के प्रावधान यथोचित परिवर्तनों के साथ दादी और परदादी पर भी लागू होंगे।

(4) जैसा कि ऊपर तय किया गया है, महिलाओं के आंशिक शेयर पति, पुत्र, पिता या भाई के हिस्से से संबंधित होंगे, जैसा भी मामला हो और उनका मूल्य पुरूष को आवंटित एक शेयर मानकर और उसमें से उचित आवंटन करके सुनिश्चित किया जाएगा। महिला रिश्तेदारों को आंशिक हिस्सेदारी।

(5) उप-धारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक महिला रिश्तेदार अपना हिस्सा अलग करने और अपने कब्जे में रखने की हकदार होगी

परन्तुक:- परन्तु निम्न के सिवाय:-

(i) कोई भी महिला रिश्तेदार किसी व्यक्ति द्वारा अर्जित और धारा 6 में निर्दिष्ट सम्पत्ति में हिस्सेदारी की हकदार नहीं होगी, जब तक वह जीवित है;

(ii) कोई भी महिला जिसका पति या पिता जीवित है, ऐसे पति या पिता के विरूद्ध, जैसा भी मामला हो, विभाजन की मांग करने की हकदार नहीं होगी;

(iii) रिश्ते की हैसियत से किसी सम्पत्ति में हिस्सेदारी के हकदार महिला किसी अन्य हैसियत से उसी सम्पत्ति में आगे या अतिरिक्त हिस्सेदारी का दावा करने की हकदार नहीं होगी।

उदाहरणः ए और उसका बेटा बी अपनी पारिवारिक सम्पत्ति का बंटवारा करते हैं। ए की मां और दो अविवाहित बेटियां हैं। उनके शेयर इस प्रकार होंगे:-

पिता	..	..
1		
पुत्र	..	..
1		
माता	..	..
1/2		

दो बेटियां .. ..

1/4 प्रत्येक

संपत्ति उपरोक्त अनुपात में विभाजित की जाएगी, पिता को 1/3, पुत्र को 1/3, माँ 1/6 और प्रत्येक बेटी 1/12.''

धारा 8 की उप-धारा (1) के खंड (ए), (बी), (सी) और (डी) चार अलग-अलग स्थितियों से संबंधित है। खंड (ए) एक व्यक्ति और उसके बेटों के बीच संयुक्त परिवार के विभाजन से संबंधित है। खंड (बी) भाईयों के बीच संयुक्त परिवार की संपत्ति के विभाजन से संबंधित है, खंड (सी) संयुक्त परिवार में अन्य सहदायिकों के बीच विभाजन पर लागू होता है। धारा (डी) ऐसी स्थिति का प्रावधान करता है जहां संयुक्त परिवार की संपत्ति उत्तरजीविता द्वारा एकल सहदायिक के पास चली जाती है। जिन महिला सदस्यों को शेयरों का हकदार घोषित किया गया है, वे संबंधित सहदायिक की मां, उसकी अविवाहित बेटियां और विधवाएं और पूर्व-मृत बेटों और अविभाजित भाईयों की अविवाहित बेटियां हैं।

इस स्तर पर, 1956 अधिनियम की धारा 6 के प्रासंगिक भागों का विस्तार से उल्लेख करना उचित होगा:

''(6) सहदायिक संपत्ति में हित का हस्तांतरण। जब इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के बाद एक पुरूष हिंदू की मृत्यु

हो जाती है, उसकी मृत्यु के समय मिताक्षरा सहदायिक संपत्ति में उसका हित होता है, तो संपत्ति में उसका हित सहदायिक के जीवित सदस्यों पर जीवित रहने के आधार पर हस्तांतरित होगा, न कि इसके अनुसारा कार्यवाही करना।

बशर्ते कि, यदि मृतक ने अनुसूची के वर्ग 1 में निर्दिष्ट किसी महिला रिश्तेदार या उस वर्ग में निर्दिष्ट किसी पुरूष रिश्तेदार को जीवित छोड़ दिया है, जो ऐसी महिला रिश्तेदार के माध्यम से दावा करता है, तो मिताक्षरा सहदायिक संपत्ति में मृतक का हित वसीयतनामा द्वारा हस्तांतरित होगा या हितबद्ध उत्तराधिकार, जैसा भी मामला हो, इस अधिनियम के तहत होता है न कि उत्तरजीविता द्वारा।

स्पष्टीकरण 1. इस धारा के प्रयोजनों के लिए, एक हिंदू मिताक्षरा सहदायिक का हित उस संपत्ति में हिस्सा माना जावेगा जो उसे आवंटित किया गया होता यदि संपत्ति का विभाजन उसकी मृत्यु से ठीक पहले हुआ होता, भले ही उसकी मृत्यु कुछ भी हो क्या वह बँटवारे का दावा करने का हकदार था या नहीं।

स्पष्टीकरण 2. -* * * * * * * *''

(बल दिया गया)

यह विवाद में नहीं है कि मैसूर अधिनियम हिंदू मिताक्षरा सहदायिक अधिकारों से संबंधित हैं। यह बात मैसूर अधिनियम की धारा 3 (सी) में हिंदू की परिभाषा से भी स्पष्ट है। धारा 4 अधिनियम, 1956 को अधिभावी प्रभाव देती है, जहां तक हिंदूओं को नियंत्रित करने वाली कोई भी विधि अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के साथ असंगत है। मैसूर अधिनियम की धारा 8 के साथ अधिनियम, 1956 की धारा 6 के परन्तुक को पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि जहां महिला सदस्यों ने मैसूर अधिनियम की धारा 8 के तहत सुरक्षा की मांग की है, वे वास्तव में एक मृत सहदायिक के प्रथम श्रेणी के उत्तराधिकारी हैं, उनका हित संयुक्त परिवार में संपत्ति बिल्कुल भी जीवित नहीं रह सकती। इस प्रकार मैसूर अधिनियम की धारा 8 (1) (डी) के तहत किसी भी वर्ग की महिलाओं के अधिकारों के अधीन होने का सवाल ही नहीं उठता। इसका मतलब यह होगा कि मैसूर अधिनियम की धारा 8 (1) (डी) को अधिनियम, 1956 की धारा 6 के प्रावधान द्वारा बताई गई सीमा तक प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

गुरूपद खंडप्पा मगदुम बनाम हीराबाई खंडप्पा मगदुम और अन्य, {1978} 3 एससीआर 671 का निर्णय इस प्रस्ताव के लिए एक प्राधिकरण है कि जहां एक महिला विभाजन पर सहदायिक संपत्ति में हिस्सेदारी की

हकदार हैं, तो अधिनियम 1956 की धारा 6 के स्पष्टीकरण के आधार पर, वह इस तथ्य के बावजूद हकदार बनी हुई है कि वास्तव में सहदायिक की मृत्यु से पहले कोई विभाजन नहीं हुआ होगा। इस न्यायालय ने माना कि धारा 6 के स्पष्टीकरण 1 में ऐसी स्थिति शामिल है जहां एक हिंदू सहदायिक की वास्तविक विभाजन हुए बिना ही मृत्यु हो जाती है। ऐसी स्थिति में, न्यायालय को यह मानना होगा कि वास्तव में संबंधित सहदायिक की मृत्यु से ठीक पहले एक विभाजन हुआ था और ऐसे काल्पनिक विभाजन के आधार पर शेयर प्रदान करना होगा। इस न्यायालय ने यह भी माना कि इस तरह के विभाजन पर महिला सदस्य का हिस्सा किसी भी हिस्से के अतिरिक्त था जो उसे मृत सहदायिक के उत्तराधिकार के रूप में मिल सकता है। {महाराष्ट्र राज्य बनाम नारायण राव, (1985) 3 एससीआर 358: एआईआर (1985) एससी 716, 721 भी देखें}

प्रत्यर्थीयों द्वारा गुरूपद खंडप्पा मगदुम बनाम हीराबाई खंडप्पा मगदुम और अन्य, (1978) 3 एससीआर 671 में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा कर यह तर्क दिया कि प्रत्यर्थी मैसूर अधिनियम की धारा 8 (1) (डी) के आधार पर सहदायिक संपत्ति में शेयरों के हकदार थे, गलत है क्योंकि जैसा कि पहले ही धारा 8 (1) (डी) के संदर्भ में बताया गया है कि अधिनियम, 1956 की धारा 6 के प्रावधान के कारण इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

स्पष्टीकरण 1 से धारा 6 के अंतर्गत अधिनियम, 1956 के अनुसार, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होगा कि पक्षकारों के शेयर क्या होंगे जैसे कि हिरी ने अपनी मृत्यु से ठीक पहले विभाजन की मांग की थी। एक मात्र अन्य सहदायिक अपीलकर्ता नम्बर 1 है। इसलिये विभाजन धारा 8 (1) (ए) के अनुसार किया जाना चाहिए जो एक सहदायिक और उसके बेटे/बेटों के बीच विभाजन का प्रावधान करता है। धारा 8 (1) (ए) के तहत जो महिला सदस्य सहदायिक संपत्तियों में हिस्सेदारी का दावा कर सकती हैं, वे हिरी की माँ, उनकी अविवाहित बेटी (प्रत्यर्थी संख्या 2) और किसी पूर्व मृतक बेटे या भाई की विधवा या अविवाहित बेटियां होंगी। माना जाता है कि हिरी की माँ 1971 में जीवित नहीं थी। न ही हिरी का कोई पूर्व मृत बेटा या भाई था। इसलिए धारा 8 (1) (ए) के तहत हिस्सेदारी की हकदार एकमात्र महिला सदस्य प्रत्यर्थी संख्या 2 है। अपीलकर्ता को अन्य सहदायिक होने के नाते विभाजन पर सहदायिक संपत्त्यिों का आधा हिस्सा मिलेगा। मैसूर अधिनियम की धारा 8 (2) (सी) के अनुसार, उसकी बहन, प्रत्यर्थी संख्या 2 को उसके भाई का आधा हिस्सा अर्थात सहदायिक संपत्तियों का 1/4 हिस्सा मिलेगा। शेष ब्याज हिरी का होगा। हमारे सामने यह विवादित नहीं है कि धारा 8 अधिनियम, 1956 के तहत, इस अपील का प्रत्येक पक्ष अपने वर्ग 1 के उत्तराधिकारी के रूप में हिरी के हित में हिस्सेदारी का दावा करने का हकदार हैं। गुरूपद खंडप्पा मगदुम (सुपरा) के

मामले में अनुपात के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 2 भी अधिनियम, 1956 की धारा 8 के तहत बिना वसीयत के उत्तराधिकारी के रूप में हिरी के हित में हिस्सेदारी का हकदार होगा।

निष्कर्ष्तः यदि मैसूर अधिनियम की धारा 8 (1) (ए) के तहत हिरी और उनके बेटे के बीच सहदायिक संपत्तियों का वास्तविक विभाजन होता, तो उनके बेटे, अपीलकर्ता संख्या 1 को 1/2 हिस्सा मिलता। उनकी पत्नी, अर्थात प्रत्यर्थी संख्या 1 और अपीलकर्ता 2, 3 और 4 को सहदायिक संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलेगा। लेकिन अविवाहित बेटी के रूप में प्रत्यर्थी संख्या 2 को मैसूर अधिनियम की धारा 8 (2) (सी) के अनुसार गणना की गई हिस्सेदारी मिलेगी, अर्थात उसके भाई के हिस्से का 1/4 हिस्सा, अर्थात अपीलकर्ता संख्या 1 हिरी के उत्तराधिकारी के रूप में उसके हिस्से के अलावा। सभी अपीलकर्ता और दोनो प्रत्यर्थी बिना वसीयत के वारिस के रूप में हिरी के हित में समान हिस्सेदारी के हकदार हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय ने पक्षकारों के शेयरों की सही गणना की है और हम इस संबंध में उसके निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं।

तदनुसार अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। यह निर्णित किया जाता है कि वादपत्र की अनुसूची के मद 3 से 6 उच्च न्यायालय

द्वारा घोषित शेयरों के अनुसार सहदायिक संपत्ति के रूप में विभाजन के लिए उचित हैं। हर्जे के रूप में कोई आदेश नहीं।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी डॉ० रेणू श्रीवास्तव (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।